तूस की आग

भवानीप्रसाद मिश्र

हिमाचल पुस्तक भण्डार
गांधी नगर, दिल्ली-110031

समर्पण

भवानी प्रसाद मिश्र जी ने
अपने जीवन के अन्तिम दिनों में
रचित इस कविता संग्रह को
अपनी धर्मपत्नी
सरला मिश्र के लिए

मैं भी कहूं....

भवानीप्रसाद मिश्र आकाश धर्मी कवि थे और इसीलिए प्रकाश धर्मी भी।

पांव जिसके धरती पर थे और शील जिसका अभकश, उस तेजस्वी भारतीय परंपरा का प्रवाह उनकी सर्जनात्मकता को गुणानुवंधी वैचारिक उन्मुक्तता को शक्ति देता है।

उनकी कविता इस अर्थ में जितनी भव्य है, उतनी ही दिव्य भी है।

तभी तो वे उन आधुनिक कवियों मे अग्रगण्य है जिन्होने अपनी ताजा कलम और टटकी काव्यात्मकता से पाठकों को लगातार आश्वस्त किया है।

उनकी कविता अपने समय की सांस्कृतिक चेतना के तीखे बोध के भीतर से फूटती है, यह उनके सृजन का एक विशिष्ट पक्ष है।

भवानीप्रसाद मिश्र हमारी आदि से आज तक भी सास्कृतिक चेतना से घनिष्ठ रूप से जुड़े रह कर अपने को जीवन्त रखते है। फल यह हुआ है कि उनकी रचनात्मकता मे मानसरोवर के सहस्रदल कमलो और चमकते हुए द्वादश मार्तण्डो की प्रभा, प्रकाश और तेजस्विता भरी है।

कवि को इस वात की प्रतीति तो है ही कि यदि हम अपने जातीय चेतना सरोवर से सूर्य के प्रकाश और खिले हुए कमलो को अलग कर ले तो हमारे जीवन से उत्सर्ग और अर्पण का भास्वर भाव ही तिरोहित हो जाए।

उत्सर्ग और अर्पण के भाव को सहेज कर प्रवहमान उनकी कविता ने भारतीय संतों की कविता के स्वभाव को अपना 'स्व-भाव' वना लिया है।

इसी तरह कवि यह भी कभी नही भूलता कि हमारे रस कृषि जीवी देश में नदियां जीवन की हरियाली है, हमारी रक्त प्रवाहिनी सांस्कृतिक नाड़िया हैं—

नही तो उसकी कविता में पहाड और नदी, खेत और मैदान, लता और पछी, किरन और फूल के रूप में वनस्पति जगत की ऐसी वहुतायत कैसे होती।

कवि सदैव सतपुड़ा और विन्ध्याचल के जंगलों के साथ नर्मदा को रखता है। गंगा मे

विपरीत दिशा में प्रवाहित होने वाली नदी है नर्मदा। नर्मदा का इतिहास परशुराम, कार्त्तवीर्य तथा सहस्रार्जुन से जुड़ा है।

और इसी के किनारे जन्मे हैं—भवानीप्रसाद मिश्र। उनकी काव्यात्मक दुकूलिनी के तमाम अर्थ-संदर्भ और जीवन-प्रसंगों के प्रतीक वृत्त इसी से बने हैं।

उनकी 'तूस की आग' में भी नर्मदा की नमी है।

उनके विचार ने, कहने के ढग ने, आडंबर रहित टोन ने, कथ्य की अदा ने, लय-प्रवाह ने, शब्द तरंग की उछाल ने, अर्थ-झंकार ने अनायास ही सबको मैंतमैंत अपनी ओर नहीं खींचा है।

—कृष्णदत्त पालीवाल

क्रम

9 तूस की आग
11 द-माशा
12 पांव की नाव
13 रात की छाह में
14 भोर के छोर पर
16 और शामें
17 या
19 उदास आकाश
20 हमदम सूरज
21 मैं आज
22 एकाध-बार
23 तुम नापो तौलो
24 मेरा दुख
26 कल्पना और कामना
27 प्यासा दिन
28 कारण डूबने का
29 सदारंग से
30 असाधारण घटना
32 करके देखना चाहिए
37 नही बनेगा
38 नाम से पुकारा
39 देश-काल
42 मेरी ही आख ने
44 ख्याल…
46 एक दिन आना
49 फासला दो लहरों का
54 प्रतीक्षा रात की
57 पहचान
60 जीवन-स्वप्न
62 आधी के सहारे
63 विकल्प
64 न जगल न मगल
65 किससे पूछू
67 बिफरे हुए विचार

70 एक वसंत में
71 उस समय भी
72 धरती की आंख
74 जो हम नही जानते
79 सादिक
80 दया और प्रेम
81 प्राय: करुणा···
82 स्वस्थ
83 क़लम कारण
84 प्रेम के खिलाफ़
85 चुपचाप
86 मौसम बनू
87 पर्याप्त मानो
89 हम ले लें हवा की जगह
91 मुश्किल के वक़्त
93 संभव है
95 भटकते रहो
96 बूढी अमराई
99 कभी-कभी
100 एक नियति
102 अपरंपार यह वैतरणी
106 घरे बाहिरे
108 रूहो-गिल
109 शब्द-भेद
110 तत्सत
111 पहाडी नदी
113 अन्ध-अविश्वास
115 कविता करेगी यह
119 पत्ते आज
120 मन मेरे
121 दिल्ली दूर अस्त
123 वसत दिल्ली में
125 वरस के पहले दिन
127 अगर मन में
129 पराजित हम
131 फिर बहुत दिनो तक

तूस की आग

जैसे फैलती जाती है
लगभग बिना अनुमान दिये
तूस की आग
ऐसे उतर रहा है
मेरे भीतर-भीतर
कोई एक जलने और
जलाने वाला तत्त्व
जिसे मैंने अनुराग माना है
क्योंकि इतना जो जाना है मैंने
कि मेरे भीतर
उतर नही सकता
ऐसी अलक्ष्य गति से
ऊष्मा देता हुआ धीरे-धीरे
समूचे मेरे अस्तित्व को
दूसरा तत्त्व

जलता रहेगा यह
उतरता हुआ धीरे-धीरे
धुआँ दिये बिना
मेरे भीतर से भीतर की तह तक
देता रहूंगा मैं एक तरह की
शह तक
कि जलता रहे यह
चलता रहे क्रम
मेरे समाप्त होने का क्रम
एक के बाद दूसरी

कविता के सहारे
जीवन की अंतिम कविता तक

अच्छा है
आग शुरू होकर कविता से
समाप्त होगी कविता में
दिखूगा जब मैं लोगों को
शात और प्रसन्न
और गाता हुआ
तब चलता रहेगा
असल में क्रम
मेरे समाप्त होने का-
भ्रम में रहेंगे मित्र
कि ठीक चल रहा है
इस आदमी का सब-कुछ
विफल रहा है इस पर
काल का प्रहार

याने हार अपनी
सिर्फ मैं जानूगा
अनुराग के हाथों
धीमी एक आग के हाथों
हार जो संतोष-दा है
ईंधन चुक जायेगा आग बुझ जायेगी
बच रहेगी राख
सिरा देंगे उसे स्नेही-जन
कह कर फूल
नर्मदा में
जो मोक्ष-दा है !

त-माशा

एक बे-
मालूम
धूम के आस-
पास की
आशा

त-
माशा
तोले दो तोले

इसे कौन-सा
शब्द बोले
उठाकर जो-
खम
बड़े बोल का
कम या
ज्यादा !

पांव की नाव

रात ने पांव के नीचे के
पत्थरों को ठंडा कर दिया है
और हवा में
भर दिया है
एक चमकदार सपना

मैं उस सपने को
देखता हुआ
चल रहा हूं
ठंडे पत्थरों पर

डर ने
मेरी अंगुली पकड़ ली है
और आश्वास
दे रहा है वह
पत्थरों पर चल रही
पांव की मेरी नाव को
सपने के भीतर से
भोर तक
उतार लाने का !

रात की छांह में

आज भी कहीं
रात के पाव के नीचे नहीं
रात के पांव के ठंडे
पत्थरों के नीचे
ठंडा और साफ पानी
बह रहा होगा
पानी के ऊपर की
नाव की तरह
हमारी तरह

और पार कर रहे होंगे
उस बहते ठंडे पानी को तारे
पूरब की दिशा में

हां हां आज की
इस आग - आग
धुआं - धुआं
रात में
बह रहा होगा ठंडा
और साफ़ पानी
रात के पांव के नीचे के
पत्थरों के ऊपर से
आग - आग धुआं - धुआं
रात की छांह में
नावें और तारे लेकर
एक साथ बाह में

भोर के छोर पर

भोर के छोर पर
मैंने तुम्हे देखा नही
सुना

सुना तुम्हारा स्वर
और देखा भी स्वर को
लहर कर पास आते हुए

तुम मगर दूर
होते जा रहे थे शायद
भोर के छोर से भी

और तभी उगा
शुक्र का तारा
आसमान में ऐसा कि

सिमटा तुम्हारा रूप
और स्वरूप आसमान का
और शुक्र के तारे का
तुम्हारे गान में

मैं देखता रह गया
तुम्हारे गान को
सुबह से शाम तक के
आसमान को

स्वर के रूप के बल पर
सुबह से शाम तक की

धूप के वल पर
भर लिया सब कुछ
प्राणों में भूल कर
अपने ही भीतर की ध्वनियां !

और शामें

और शामें

इनके बारे में क्या कहूं
फिर चाहता क्यों हूं
कहना मैं इनके बारे में

जब इनमें से
किसी एक भी शाम को
निबाहता नहीं हूं मैं

उस तरह
निबाही जानी चाहिए
जिस तरह हर सुंदरता !

या

या कुछ नहीं बचा
दूर - दूर तक
शामों के पक्ष में

सिवा इसके कि
छूती हैं ये सिर्फ़
मेरे या तुम्हारे मन को

तो छुएं
और चली जायें
सोचते हुए यह कि

किसने बनाया है हमें और
क्यों
कौन देखता - समझता है हमें
इन दो - चार लोगों की तरह

जो हमें ताक रहे हैं
और कर नहीं पा रहे हैं
आपस में बातें

या कह नहीं पा रहे हैं
वह जो वे कहना
चाहते हैं

क्या जाने ये हमें
देख रहे हैं या सोच रहे हैं
हमारी आड़ में खड़े होकर

अपनी कोई नयी रात
जो घनी होगी
पहले की रातों से भी

क्या जाने शामों को
कौन बनाता है
इस तरह
आकर चले जाने के लिए

दिन बदल गये हैं
मगर शामें
ना ये नहीं बदली

कौन बनाता है इन शामों को
जो वक़्त बदल जाने के बाद भी
नहीं बदली है

और बदली नहीं है बावजूद
घनी होती चली जाने वाली
रातों के !

उदास आकाश

हंसो के डैने तक
पैने लगते हैं जिसे
उदास ऐसा आकाश
तरंगित कैसे कर सकता है भला
कार्तिक की चांदनी

साफ़ किसी ख्याल के बजाय
निरर्थक सवालों पर सवाल
सूझ रहे हैं आज
वन को

कौन करे निश्चिन्त
इसके
थरथराते मन को

तुम बैठ जाओ
उत्साह भरे मेरे शरीर
सशंकित इस वन में
कि चांदनी को मिल जाये
कि चांदनी को मिल जाये
तुमसे और आकाश को
बहलाने लायक़ कोई तत्व

खिल जाये चांदनी की तरह
उदास आकाश भी
आश्वस्त हो जाये वन का मन
आकाश को
डैने हंसों के
पैने न लगें !

हमदम सूरज

हम दो थे
मगर फिर
नींबू की तरह
पीला सूरज
डूब गया

रह गया
एक मैं
देर तक नहीं
इस अंधेरे से
उस अंधेरे तक
इस ख्याल में
कि पौ फटेगी
सूरज आयेगा

और फिर
हो जायेंगे हम
कम-से-कम
दो !

मैं आज

आज मैं सूरज हूं
सदियों से नींद का मारा

रात की गोद में
सिर रखना चाहता हूं

कभी नहीं हुई
कोई भी रात मेरी

मगर हर बात कभी-न-कभी
हो जाती है

आज रात
मेरी हो जायेगी

और सो जायेगी वह
लेकर मुझे अपनी बांहों में !

एकाध-वार

जैसे रोम खड़े हो जाते हैं
सुख में या भय में
वड़े हो जाते हैं वैसे
कई बार
अनसुने हल्के स्वर
अन बोले शब्द
अनाहत ध्वनियां
अनुभव की शून्यता में . . .

शायद कई-बार कहना
ग़लत है
बदल कर कहता हूं
एक
आध
वार !

तुम नापो तौलो

तुम नापो
तुम तौलो
क्योंकि तुमको
इसका नाद है

हर चीज तुम्हें
नाप और तौल के
हिसाब से
याद है

तुम नापो और तौलो
चाहो तो मुझे भी
मगर
उदास मत हो जाना अगर

मैं तुम्हारे
किसी भी बाट से बंटूं नहीं
तुम्हारे किसी भी नाप में
अंटू नहीं !

मेरा दुख

एक पहाड़ से
निकला था मेरा दुख
और बहा फिर वह
मैदानों मे

बियाबानों में से
खेतों तक
ले गये उसे लोग
तो वह गया

और हरे किये उसने
घावों की तरह
इनके उनके
सबके सुख

दुख मेरा
एक पहाड़ से निकला था
और पार करके मैदानों को
मिल गया सागर से

कई बातें हुई है
इसके साथ
बहुत-कुछ गुजरा है इस पर
पहाड़ से सागर तक पहुंचने में

और दुख ने मेरे
ज्यादातर

अच्छा माना है
उस सबको

सिवा इसके कि बिना दिये
लोगों ने उसके ऊपर पुल
कि छूने न पाये
मेरा दुख उन्हें !

कल्पना और कामना

औपान्सिकता
अछूता प्यार

घर में
खुशी का पारावार

देश मे शांति
दोस्तों से सद्भावना

सारी ये चीज़ें
एक के वाद एक कल्पना और कामना

कामना और
कल्पना !

प्यासा दिन

खाली कासा लेकर
आयेगा कल का प्यासा दिन
हर दिन की तरह

सूनी-सूनी आंखों
देखकर उसे
रह जाता हूं हर दिन

उदास और एकरस
किसी जलाशय की तरह हर दिन
सह जाता हूं उसकी प्यास

मेरी तरंगें तो
उसे उठकर
भर नहीं सकती

सोचता हूं वह खुद
क्यों नहीं
भर लेता

डुबा कर
मेरी उदासी में
खाली अपना कासा !

कारण डूबने का

सूरज है शाम के सिर पर
और माथा है दिन की थकान का
शाम के चरणों में

अलग है रूप
शाम की उड़ानों का
सुबह की उड़ानों से

और शाम के गीतों का
उसी तरह
सुबह-सादिक के गानों से

फर्क न होता इन दोनों में
तो ग़र्क़ न होता मैं
इस तरह इन दोनों में !

सदारंग से

हर रंग
रंग बदलता है
सदा एक रंग बने रहने से
मन कहां बहलता है

बदलते रहना अपने को
जरूरी है सदारंग
रंग चटक होता है इस तरह
अपना

रंग इस तरह
ताजापन पाता है
सपना
अपनापन पाता है

मन
अछोर होकर इस तरह
आत्मा तक
सिमट आता है !

असाधारण घटना

शताब्दियों ने जैसे
आज बैठकर संसार के
सबसे ऊंचे पहाड़ पर
निछक्के में
अपना जूड़ा खोला है

अपार और अज्ञेय
एक सौन्दर्य-रहस्य मानो
बोला है
इस असाधारण
घटना के माध्यम से

शायद सुना है यह बोलना
शायद देखा है यह
शताब्दियों का जूडा खोलना
आने वाली शताब्दियो ने

वे अब
स्नान नहीं करने देंगी
अपने किसी एक भी दिन को
रक्त से
लालिमा रण की इस सौन्दर्य ने
फीकी ही नहीं समाप्त कर दी है

आज का दिन
एक मंगल दिन है

किसी और कारण से नहीं
केवल इस कारण से
कि कम-से-कम मैंने
देखा है आज

आने वाली शताब्दियों के साथ
पिछली शताब्दियों को
बैठकर निछक्के में
संसार के सबसे ऊंचे पर्वत पर
अपना जूड़ा खोलते

और कम-से-कम मैंने सुना है
अद्भुत इस सौन्दर्य को बोलते
कि स्नान नहीं करने देंगे
अब हम अपने किसी
एक भी दिन को
रक्त से !

करके देखना चाहिए

दिन जो आते है दुख के
या दिन जो जाते हैं सुख के
या आते-जाते है
जो सुख-दुख के दिन
या बारी-बारी से
आ-जा कर ठहर जाते हैं
तुम्हारे साथ
जरा प्यार से लो
अपने हाथों में उनका हाथ

दो उन्हें वह सब
जो उन्हें चाहिए
क्यों कि क्या जाने
वे तुम्हारे पास
कुछ लेने ही आये हों

देने के लिए कुछ
कोई शायद ही जाता है
किसी के पास
लेने ही आते-जाते है सब
भाव चाहे वह कितना ही
सूक्ष्म क्यों न हो मन में

कब जाते है हम ही
किसी को प्यार देने के
विचार से
लेने ही जाते हैं अपने प्रिय से

किसी न किसी
मोटे या बारीक ढंग से
यहां तक कि अनजाने

व्यक्ति से लगाकर देश तक
भाव से लगा कर घाव तक
जो कोई भी आये
समझो उसकी ज़रूरत
और इतना तो जान ही लो
तुम मुझ से
कि समर्थ हैं हम
जरूरतो को पूरी तरह न सही
एक बड़ी हद तक
रवा करने में

लेकर जल
मंजे चमकते लोटे मे
अतिथि के पांव धुलाओ
लेकर आदर से उसे
अपने आगे-आगे
स्वच्छ आसन पर बैठाओ
और फिर पिलाओ उसे ठंडा जल
बने तो हल्की-सी सुगंध
या मिठास मिलाकर उसमें
अपने मन की
फिर पूछो कुशल प्रश्न
पूछो कैसे आये

संकोच में पड़कर
संभव है वह अपने को

तुम पर एकदम न खोले
तत्काल न कहे वह
जो कुछ वह लेकर आया है
मन में
फिर मत पूछो
चलाओ अपनी-पराई
पीर की बातें
बातें निकाल दो
उसके सामने से उत्साह की
लेने दो उसे समय
आने दो वह क्षण
जब वह खुले
दुख हो या सुख
वह उसे खोल कर कहेगा
तुमसे अपने मन की बात
बोल कर रहेगा

अटपटी भी
हो सकती है उसकी
इच्छा
सुन लो
जितना कर सकते हो
उसमें से उतना
करने के ख्याल से
चुन लो
और समझा दो स्नेह से
उसे सीमाएं अपनी

वह जब
इसके बाद फिर कभी आयेगा

तो तुम्हारी सीमाएं
समझ कर आयेगा
और जब जायेगा फिर
तो पहले से कुछ ज्यादा
आश्वस्त हो कर
बन जायें शायद
जीवन-भर के संबंध
उसके सुख-दुख से
घनिष्ठ ऐसे
जैसे वे तुम्हारे ही हों

नहीं
विचित्रता इसमें
कुछ नहीं है
कर के देखो
बहेंगे उसके सुख-दुख
तुम्हारे लिए कर धारा की तरह
और तब तुम उसमें
तैर कर ही नहीं
तर कर देखो

और वैसे तो रहस्य है
ये हमारे ख्याल
काल और देश के बारे में
समझिए जा पहुंचें हम
किसी चमत्कार के मारे
आकाश-गंगा के किसी तारे में
तो हम क्या जानेंगे उसका
क्या मांगेंगे उससे

और वही क्या बना सकता है
हमारा
इतनी अद्भूत आकाश-गंगा का
अद्भुत से भी परे उसका वह तारा

तो भी हम निष्ठा को
छोड़ना नहीं चाहते
साधारणतया
अलग नहीं होना चाहते
अपने सुख से
और यथा सम्भव किसी दुख से
अपने जो जोड़ना नही चाहते
मगर बातें जो
असाधारण और असंभव
मानी जाती है
उनसे जुडकर देखें
उनके विस्तार में
उड़कर देखें
तो उनमें साधारण और संभव से
बहुत अधिक मिलता है

करके देखना चाहिए
असाधारण ढंग से
जीकर देखना चाहिए
असम्भव को करते हुए
मर कर देखना चाहिए !

नहीं बनेगा

तय करके
नहीं लिख सकते आप
तय करके लिखेंगे
तो आप जो कुछ लिखेंगे
उसमें
लय कुछ नहीं होगा
लीन कुछ नहीं होगा

एक शब्द
दूसरे शब्द को
आवाज़ देता है कई बार
और अन्यमनस्क-सा
दूर पर खड़ा शब्द
घूम पड़ता है आवाज़ की तरफ़

हरफ़ के अपना मन है
सुन लेते हैं वे
अपने मन की आवाज़ें
नहीं तो दे देते हैं
अनसुनी

खींचे ही कोई शब्द को
तो खिंच जायेगा बेचारा
मगर
अन्तर समझें हम
खींच जाने
और खिंच जाने का !

नाम से पुकारा

नाम से पुकारा किसी ने
आवाज़
जानी हुई ही नहीं
शायद
जीवन की सबसे अधिक
आत्मीय आवाज़ थी

उठा और दौड़ा
दिशा में आवाज की
हवा तेज थी पानी भी
कम नही बरस रहा था

बहुत अलग था
आवाज की दिशा में
भीगते-भींगते
दौड़ने का अनुभव

आवाज देने वाला
नहीं मिला
आवाज दी गयी थी
या सिर्फ़
आयी थी वह मुझे भरमाने
स्नेह की छड़ी में
कृपापूर्वक दौड़ा कर
अरसे से
सिकुड़े पड़े मन को
गरमाने !

देश-काल

जगह
जहां मैं हूं
वही है

और समय
जिसमें मैं हूं
उसके सिवा है
कोई दूसरा

समय
सिवा कभी-और के
शायद है ही नहीं

और जगह
जो है उसके सिवा
नहीं होती दूसरी अन्य

रात का मुंह
और नदी का मुहाना
यह है
इस वक़्त मेरी जगह

कल्पना में
चाहे जिस जगह की करूं
समय वह नहीं है
मेरे वहां जा पहुंचने का

फिर वहां
पहुंचने तक
क्या होगा
कौन कह सकता है

क्यों कि जगह मैं जहां हूं
वह है और
पहुचना चाहता हू
जहां
उसके लिए
सिवा और-वक़्त के
वक़्त नही है

इसलिए मैंने
जगह को स्थिर
और समय को
गया-गुज़रा या
'कभी' आने वाला माना है
'अभी' का
कोई मतलब नही है

मतलब नही है इसी तरह
कहीं और का
तुम जहां हो वहां हो
कही और
कब पहुंचोगे
अभी नहीं कह सकते तुम
इसे

ठीक क्या कहना चाहता हूं

मेरी ही आंख ने

किस चीज ने धोखा दिया
शायद मेरी आंख ने ही

धरती का यह टुकड़ा
जिसे बहती एक नदी की धारा
तीन तरफ़ से घेरे है
ओढ़े है चादर चांदनी की

सुंदर दिखना चाहिए था मुझे
यहां का सब
मगर यहां कुछ दिख ही नहीं रहा है जैसे

मैं कुछ भी देखने के बजाय
सुन रहा हूं तेज हवा का स्वर
स्वर जो मानो कहीं जा पहुंचने की
त्वरा में है

मैं जैसे बचपन में
अंधेरा हो जाने पर डर कर
बढा देता था अपनी चाल
चारों तरफ़ भौंकते हुए कुत्तों के बीच

और कम भी कर लेता था
कभी अपनी गति सोच कर यह
कि डरा हुआ समझ कर मुझे
टूट न पड़ें मुझ पर कुत्ते

(कहना चाहता था आवारा कुत्ते
मगर मन में बात चांदनी की थी
तो टाल गया वह शब्द)

सोचता हूं चांदनी ने सुंदर बनाया होगा
यहां हर चीज को
मगर आंख ने धोखा दिया है
शायद और मन
इसीलिए चांदनी से

नहाये वन में बहती हवा को
कई गुना करके सुन रहा है
कानों पर शंख जड़ दिये हों जैसे
असमय के हाथ ने

तभी तो
सागर के गर्जन की
तरह हो गया है
स्वर हवा का !

ख़्याल…

ख़्याल मेरा चुटकी से छूट गया है
टूट गया है गिर कर
सख़्त फ़र्श पर
शीशे की तरह

या कहो भाग गया है विजन में
किसी डरे हुए हिरन की तरह
भांप कर आसन्न
अहेरी की आहट
भागते हुए फिर
मुड कर भी नहीं देखा

गुम हो गया है घने जंगल में
ख़्याल जिसे मैं अभी
थपथपा रहा था और
दिखाने जा रहा था जिसे
मैं विना भयभीत किये
अपने सुहृद - शब्द - मित्रों को
कि वे उस पर रीझ जायें
और जाहिर करें उसे
जैसा - का - तैसा
कला की अंगुलियों के
हल्के स्पर्श के साथ
प्राण-भित्तियों पर
शताब्दियों तक बने रहने के लिए

और शताब्दियों के बाद
होने के लिए अन्वेषित
वाघ की गुफाओं के
आदिम चित्रों की तरह

मगर ख्याल चुटकी से
छूट गया है
टूट कर बिखर गया है ऐसा
कि मैं उसे अब
किसी तरह समेट नही सकता

हिरन हो गया है वह सचमुच का
और महाविरे का

हिरन महाविरे का कही मिलता है
और सचमुच के हिरन के पीछे
दौड़ा कर घोडा रहना पड़ता था
राजाओ तक को
रात-रात-भर जंगल में
या पंजे में किसी सिंह की

तुम किस खेत की मूली हो
भवानी प्रसाद
जो ख्याल के हिरन का
पीछा करके पा जाओगे उसे
शब्दों पर जाहिर करके
अंकित करवा दे कर
प्राणों की भित्तियों पर
अन्वेपित होने के लिए
शताब्दियों के बाद !

एक दिन जाना

मैंने एक दिन
चुपचाप देर तक बैठे-बैठे
नर्मदा के किनारे
जाना कि
नदियों का जन्म
रात में हुआ है

और प्रकाश होते-होते तक
वे बह कर चली गयीं
वनों से होकर
मैदानों तक
वे रात में भी चली
और दिन को भी जारी रखीं
उन्होंने अपनी यात्रा

मगर हुआ यह सब
आदमी के पैदा होने से पहले
किसी आदमी को
नही जानने दिया उन्होंने
अपने जन्म का क्षण
और स्थिति
अपने बचपन से लगाकर
कहीं लीन हो जाने तक की

क्या जाने कब सुनी
अमरकंटक की पहाड़ियो ने

नर्मदा की पहली किलकारी
उसके पहले - पहले रोने का स्वर
मुखर कब हुआ गंगोत्री
गंगा के गान से

पहाड़ों की खोहों में तब
शायद नहीं थे पंछी भी
नहीं तो प्यास लगने पर
वे क्या करते
उड़ानें भरते हैं वे आज
जिस निश्चित भाव से
आकाश में
उतरते हैं जैसे धरती पर
प्रकाश की तरह
कैसे होता यह
बिना नदियों के

वृक्ष ज़रूर नदियों के
पूर्वज है
इन पूर्वजों ने मगर
दूध पिया है
अपनी अनुजाओं का
जो उनके कष्ट को समझ कर
सिक्त करती रहीं
पय से अपने उनकी जड़ें

क्रोध सूरज का
वृक्षों पर इसीलिए है
कि वे उसकी किरनों के लिए
रुकते नहीं हैं

उठते चले जाते हैं ऊपर
उन्हें खुद
पकड़ लेने के लिए

साहस और
शक्ति यह उन्हें
हम से मिली है
ऐसा कह रही थी
नर्मदा !

फासला दो लहरों का

मेरी आंखों
और तुम्हारी आंखों के
बीच में
एक फ़ासला है

फ़ासला यह
एक तरह के अंधेरे में
खड़ा है

अजीब बात है
कि यह रात नहीं है
दिन है

सब जगह उजाला है
सिवा उस जगह के
जो मेरे और

तुम्हारे बीच की है
देख पा रहा हूं मैं
सब कुछ सिवा तुम्हारे

तुम मुझे धुंधली
छाया की तरह दिख रही हो
और संभव है कि

देख रही हो तुम भी मुझे
एक छाया के रूप में
या न हो तुम्हारी हद तक

हमारे बीच में अंधेरा
साफ़ - साफ़ ही
दिख रहा होऊं मैं तुमको

तो तुम मुझे
देख पा रही हो या नहीं
यह मैं जरा आगे बढ़ कर देखूं

देख पा रही हो तुम मुझे
क्यों कि मैं बढा
तो तुम

जो छाया - जैसी हो
कुछ छाया - जैसी ही
पीछे हटती दिखी

फटते दिखी
आस - पास की चीजें
दृश्य या दिखावे

एक मुसकुराहट में
पहले से साफ़ हुआ
हमारे बीच का व्यंग

याने आस पास जानता है
कि हम एक - दूसरे से
नहीं मिलना चाहते

या कम से कम
तुम हमारे
आसपास हो सकने की स्थिति से
बचना चाहती हो

तुम नहीं चाहतीं कि हम
उजाले में
और - और अस्तित्वों की तरह

दिखें एक - दूसरे को और देखें हमें
देखते हुए एक - दूसरे की तरफ
दूसरे अस्तित्व

तुम्हारे मन में
कुछ ऐसा है शायद
कि बना रहे

हमारे बीच के फ़ासले में अंधेरा
और घिरा रहे शेष विस्तार में
फिलहाल उजाला

विस्तार भी
धीरे - धीरे भर जायेगा
हल्के ही सही अंधेरे से

क्यों कि समय तो
सरक रहा है और
रात आ रही है

रात
मगर आज
पूर्णिमा की है

शायद
चंद्रमा के उजाले के साथ
कर न सको तुम वैसा खेल

जैसा किया है तुमने सूरज के उजाले के साथ
और उजाला चंद्रमा का
पड़े सब पर एक - सा

हमारे और तुम्हारे बीच की
दूरी पर भी फैले दूधिया चांदनी
और तब तुम ठीक मानो

एक - दूसरे की तरफ देखना
और जानना - पहचानना
एक - दूसरे को

तब पीछे न हटो तुम
मुझे अपनी तरफ बढ़ते देख कर
हो जाओ प्रस्फुटित

उस तरह व्यंग में नहीं
जैसे हुए थे अभी आसपास के अस्तित्व
तुम्हारी तरफ मेरे बढ़ने से

एक धुंधलका संभव हुआ है
सूरज के रहते
मेरे और तुम्हारे बीच के फ़ासले में

संभव नहीं दिखता वह
चंद्रमा के आकाश में आ जाने पर
तुम जो अभी छाया हो मेरे सामने

चमक उठो सूरज के जाने पर
चांद के नीचे
झील की तरह

प्रतीक्षा रात की

अंधेरा न सूरज का है
न सूरज के ऊपर आये हुए
किसी घन का है
अंधेरा हमारे-तुम्हारे बीच में
मन का है
मन के संकोच का है

तुम्हें लगता है
कोई और भी है इस हल्के अंधेरे में
सिवा हम दोनों के
और छाया तुम्हारी इसीलिए
मैं आगे बढता हूं
तो पीछे हट जाती है

खिसक जाती है
मेरे पांवों के नीचे से धरती
क्या जाने मैं दिखता हूं तुम्हें
अपनी तरफ़ बढ़ता हुआ
या केवल आवाज सुनती हो तुम
बढ़ते हुए पांवों की

भावों की भीड में सोचने लगता हूं
कि जब बीच में अंधेरा है
तो स्वाभाविक है कि
न दिखे बढ़ना न रुके रहना

और दूसरे जो देखते हैं
अनुभव करते हैं जैसा
मैं उससे कुछ अलग देखता हूं
अनुभव करता हूं
उससे कुछ अलग

अब इसीलिए
ठहरना पड़ेगा रात तक
देखूं रात को
क्या होता है चांदनी में
क्यों कि रात
एक स्निग्धता का नाम है
वह अलग अनुभव
दे सकती है दिन से

वह तब आती है
जब थकती हैं
अलगाव से चीजें और लोग
एक कर देती है वह सबको
झील की
दौड़ती लहरों की तरह !

किस तरह बदल जाते हैं
अलग-अलग
सन्दर्भों में पड़कर

वे तब प्रतीक बन जाते हैं
तुमने इसी तरह चांदनी को
एक प्रतीक में बदल दिया

वह मिली मुझे
तुम्हारा एक
उपहार बन कर

मगर मैं
ले नहीं सका उसे उतनी
खुशी और कोमलता से

जितनी खुशी और
कोमलता से दिया था तुमने मुझे
चांदनी में चांदनी का उपहार

चार के बीच वह उपहार
तुमने निस्संकोच दिया
मगर मैं सकुचा गया

लगा लोग बिना कुछ सोचे
पूछने लगेंगे
इनसे शायद आपकी

पुरानी पहचान है
कब से है
आपकी इनकी पहचान

किस तरह बदल जाते हैं
अलग-अलग
सन्दर्भों में पड़कर

वे तब प्रतीक बन जाते हैं
तुमने इसी तरह चादनी को
एक प्रतीक में बदल दिया

वह मिली मुझे
तुम्हारा एक
उपहार बन कर

मगर मैं
ले नहीं सका उसे उतनी
खुशी और कोमलता से

जितनी खुशी और
कोमलता से दिया था तुमने मुझे
चादनी में चांदनी का उपहार

चार के बीच वह उपहार
तुमने निस्संकोच दिया
मगर मैं सकुचा गया

लगा लोग बिना कुछ सोचे
पूछने लगेंगे
इनसे शायद आपकी

पुरानी पहचान है
कब से है
आपकी इनकी पहचान

क्या बताऊंगा मैं
जब वह तब से है
जब मैं था ही नहीं !

•

जीवन-स्वप्न

जब-जब मैं
अपने बारे में
सोचता हूं
तो जैसे एक
सपने के बारे में
सोचता हूं
सपना जिसे
मैंने आंख खुलने के
जरा पहले देखा था

बल्कि कह सकता हूं
आंख खुल गयी थी
जिसको देखने से
और याद जिसकी
फिर नहीं बैठा पाया मैं
सिलसिले से

सपने बे-सिलसिले भी
कम नहीं आते मुझे
मगर जिन्दगी मेरी
एक तरह के
सिलसिले वार सपने जैसी है

जैसे सिर-पैर हैं मेरे
वैसे सिर-पैर है
मेरे सपने के
या होने चाहिए

होने चाहिए
सिर-पैर उसी तरह
मेरी-तुम्हारी ज़िन्दगी के
यहां तक कि
सोने चाहिए हमें
अपने सपने भरे सिलसिले से !

आंधी के सहारे

आज की हवा साफ़ है
इसलिए कहता हूं इसे साफ़
कि खींचते हुए भीतर इसको
अहसास नहीं हो रहा है
कि खींचा जा रहा है कुछ

दर्द इस बात का है
कि यह साफ हवा
शहर मे
एक आंधी के बल पर
आई है

याने गन्दी हवा
शहर में
एक बार कुआं है
एक बार खाई है !

विकल्प

किसकी बात करें
कवि की
किसान की
शब्द की श्रम की

या पैसे की बाजार की
राजनीति की चालाकी की
सरासर झूठ की
डंडे के बल पर कराये जा रहे
श्रम की
चुनना मुझे है

पहली बात प्रतिक्रियावाद
कहलायेगी
दूसरी विज्ञानवाद !

न जंगल न मंगल

नगाड़े
और नाच
और रात
कब से नहीं
सुने देखे

देखना-सुनना हो
तो कहां जायें
अब कहां है
जंगल में मंगल

बल्कि कहो
कहां है जंगल
कहां है मंगल !

किससे पूछूं

मैं घटनाओं में
जीता हूं
या विचारों में
यह किससे पूछूं

घटनाएं आती हैं
और छोड़ जाती हैं सोच-विचार
मैं गुम-सा हो जाता हूं
विचारों में पड़कर

और तब तक गुम रहता हूं
सोच-विचार में
जब-तक वे किसी
साफ़ सुलझे सांग
विचार का रूप नही ले लेते

कई बार मैं
विचार तक जा कर रुक जाता हूं
और कामों में नहीं
उतार पाता उसको

तब विचार पर धूल
जमने लगती है
जैसे एक जगह धरे-धरे
जमने लगती है किताबों पर धूल

फिर कभी काम में
लाना चाहो उस विचार को
तो पहले झाड़ो
उस पर हफ़्तों या महीनों की
जमी धूल !

कई दिनों से
मन में धूल खाते विचार
कई बार एकाएक
उथल - पुथल मचा देते हैं
रचा देते है असमय में
मानो कोई अनचाहा उत्सव
और मन मार कर
निबाहने पड़ते हैं
जब रच ही जाता है उत्सव
तो उसके सारे दस्तूर

इसीलिए ज़रूरी
मानने लगा हूं मैं अब
विचारों को
रोज - रोज उलटाना - पुलटाना

मन में धूल से भरे
विचारों का
अचरज में डाल देने वाला व्यवहार
बचाना चाहता हूं

घटनाएं
सोच - विचार
और विचार
इनमें जितनी संगति
सध सके उतनी
तरल रह पाती है
हमारी भौतिक और
मानसिक गति समाज में

अकेले में तो मैं
कोई भी अति
सह लेता हूं
घटना की
या विचार की
मगर समाज में सामंजस्य
रखना चाहिए
घटनाओं और विचारों का

निश्चय ही यह अभी
कुछ दिनों पहले
एक युवक ने बड़े विचार से
मुझे विचार कर सुनाया
और चल पड़ा
सौ जगह भटक कर
इस मकान में बसने का
उपाय पूछना
आगे ही घर भरे
विचार के बल पर !

एक वसंत में

एक वसंत में
दो बैल
चर गये थे
मेरा गुलजार का गुलजार

मगर
ऐसा तो नही हुआ
कि मैंने
फिर नही रोपे
फूल - पौधे !

उस समय भी

जब हम बैठे
सिर झुकाये
लिख रहे हैं एकाग्र

देख तक नहीं रहे हैं
उठाकर आँख
किसी की तरफ़

क्या जाने
उस समय भी हमारी इच्छा
सब तरफ़ छा जाये
और उतार कर ले आये
कुछ ऐसा रंग - रंग पर

जैसा सिर्फ़
सपनों में उतर सकता है
या फिर नाटक के मंच पर!

धरती की आंख

मैं घने वृक्षों के नीचे
लेटा हूं
रात है तारों से भरी

तारे दिख रहे है
घने वृक्षों के बीच से
देख रही है मेरी आंख तारों को

या कहो
देख रही है धरती की आंख
आसमान को

आंखें धरती के है
नहीं है शायद आंखें
आसमान के

आसमान
धरती को
नही देखता

धरती
आसमान को
देखती है

इस वक्त
मैं हूं या नहीं हूं
सवाल यह हो सकता है

मगर तय है
कि आसमान है
और देख रही है आसमान को
एकाग्र होकर धरती की आग
आसमान है
और तारे हैं
और आसमान पर लगी आंख है
धरती की

मैं नहीं हूं
घने वृक्ष नहीं हैं
पत्ते घने वृक्षों के
समेट कर आग की उत्सुकता
हिल - डुल कर
सुविधा दे रहे हैं
धरती को कि देखती रहे वह
जब तक चाहे
आसमान को

होने को धरती है
आसमान है तारे हैं
मैं भी हूं
मगर इस समय
आग - भर हूं मैं
धरती की !

जो हम नहीं जानते

लहरें हवा और पानी की
बह रही हैं
कुछ ऐसी गति साध कर
कि लगता है अलग - अलग
नहीं बह रही हैं वे

न हवा बह रही है
आकाश में
ठंडा करते हुए वातावरण
न नदी बह रही है
घाटी में
गुंजाते हुए वन का सन्नाटा

लगता है दोनों गतिवान हैं
समतल भूमि पर
और जाना दोनों को कहीं नहीं है
चलना या बहना इनका
मानो इतना कहना - भर है
कि हम स्थिर नहीं हैं

और न हम
निरर्थक हलचल में पड़ कर
समय काट रहे हैं
हमारी चाल को समझो
और समझो हर फिलहाल से
हमारी घनिष्ठता
फ़िलहाल को फ़िलहाल ही मत समझो

वह काल से अविच्छिन्न है
न फिलहाल रुका है न काल
न हम रुके हैं
तुम जानते हो या नहीं जानते
मगर जानता है इसे आसमान
जानती है इसे धरती
और जानती है इसे ऊष्मा सूरज की

गाढ़ा नीला आसमान
तेज चमकीला सूरज
तरल पानी
गरम हवा
ठोस धरती
हम पांचों
काल को जानते हैं
और काल जानता है हमें

काल अगर है
हमारी यानी हवा पानी
आकाश प्रकाश और धरती की
चाल है

तुम इसे नहीं जानते
काल तुम्हारे लिए अभी तक
पहेली है क्यों कि
आत्मीयता नहीं साधी
तुमने इससे

जो हम नहीं जानते

लहरें हवा और पानी की
वह रही है
कुछ ऐसी गति साध कर
कि लगता है अलग - अलग
नही वह रही है वे

न हवा वह रही है
आकाश में
ठंडा करते हुए वातावरण
न नदी वह रही है
घाटी में
गुंजाते हुए वन का सन्नाटा

लगता है दोनों गतिवान हैं
समतल भूमि पर
और जाना दोनों को कही नहीं है
चलना या बहना इनका
मानो इतना कहना - भर है
कि हम स्थिर नही है

और न हम
निरर्थक हलचल में पड़ कर
समय काट रहे हैं
हमारी चाल को समझो
और समझो हर फिलहाल से
हमारी घनिष्ठता
फ़िलहाल को फ़िलहाल ही मत समझो

उपयोग और उपभोग की
दृष्टि से देखा

और अपने को भी
सीमित किया घेरों में
घेरों को भी रोज - रोज
संकुचित करते गये

अपनेपन का विस्तार नहीं किया
नित नये विस्तार का नाम लिया
मगर जीवन जिया
घेराबंदी का

कितने तरह की घेरेबंदियां
आदमी और औरत की
भाषा की और भेस की
धरम की और देस की
तुम अपने सारे घेरे जानते हो
और मन ही मन
उनकी खराबियां मानते हो

मगर तुम ठहरे मनुष्य और
हम प्रकृति
तुम्हें सोचना आता है
हमारा कहना तुम क्यों सोचो
क्यों मानो सबसे एक अपने को
काल के साथ - साथ हम पांच छै के
मिले - जुले सपने को

हवा और पानी की लहरें
वह रही है आज से नहीं कब से

उपयोग और उपभोग की
दृष्टि से देखा

और अपने को भी
सीमित किया घेरों में
घेरों को भी रोज़ - रोज़
संकुचित करते गये

अपनेपन का विस्तार नहीं किया
नित नये विस्तार का नाम लिया
मगर जीवन जिया
घेराबंदी का

कितने तरह की घेरेबंदियां
आदमी और औरत की
भाषा की और भेस की
धरम की और देस की
तुम अपने सारे घेरे जानते हो
और मन ही मन
उनकी खराबियां मानते हो

मगर तुम ठहरे मनुष्य और
हम प्रकृति
तुम्हें सोचना आता है
हमारा कहना तुम क्यों सोचो
क्यों मानो सबसे एक अपने को
काल के साथ - साथ हम पाच छै के
मिले - जुले सपने को

हवा और पानी की लहरें
बह रही है आज से नहीं कब से

करते हुए ऐसा ही कुछ
हम सबसे
मगर सच है
हम मनुष्य हैं वे प्रकृति

हम उनकी क्यों सुनें
जब कि चुन सकते हैं उन्हें
मनमाने उपयोग के लिए हम
तो उन्हें फ़िलहाल
मनमाने उपयोग के लिए क्यों न चुनें

अगर कभी तय होते लगा
कि गलत था हमारा
प्रकृति को उपभोग के लिए
चुनना
तो जैसे बदले हैं रंग हमने
जब से हमारा इतिहास
चल रहा है तब से
तो तर्क-बुद्धि तो पड़ी ही है
हमारे पास
और पर्याप्त मात्रा में बेशर्मी भी

हम घोषणा कर देंगे
कि ग़लत थे हमारे
अब तक के काम
हम उन्हें छोड़ते हैं
अपने को पूरी प्रकृति
और पूरी आदमीयत के साथ
जोड़ते हैं

हवा और पानी और
धरती और आकाश
और प्रकाश और काल
हमारी क्षुद्रता को
सदा से जानते है
क्षमा कर देंगे वे हमें
क्यों कि वे क्षुद्रताओं को
सदा से क्षम्य मानते हैं।

सादिक़

यह तो मेरी कृपा है
अपने पर
कि मैं लुटा हुआ हूं
एक सपने पर

सपना यह
कि बदली जा सकती है
शब्दों से हालतें

हमारी और आपकी
स्थितियां
पुण्य की या पाप की

याने बुरे को हम
वह जितना सिर उठाये है
उससे कम सिर उठाने पर
बाध्य कर सकते हैं

और साधन की तरह
बरतते हुए अपनी मुट्ठी से
वह साध्य पूरा कर सकते हैं
जिसे सबका भला कहेंगे
हम और आप
पुण्य और पाप !

दया और प्रेम

दया में दंभ की ही नहीं
निरंतरता है
एक तरह की क्रूरता की

दया दिखाई जा सके जिस पर
ऐसा कोई
दयनीय चाहिए न कहीं न कहीं

इसलिए मैंने
दया से अपने को बचाया है
प्रेम को चुना है

दया को मैंने
दूर खड़े होकर
देख-समझ लिया है सरापा

और सुना है प्रेम को
हर क्षण अपने भीतर
बजते गाते और
गुनगुनाते

प्रायः करुणा....

प्रायः करुणा
भर कर संदेह
आंख में

देखती है
मेरे प्यार की तरफ़
और मैं

निकल जाता हूं
उसके देखते-देखते
चार की तरफ़

मुझे आया देख कर
वे चार खिल जाते हैं
और तब हम पाच-सात

भरते हुए कुछ सुगंध-सी
अखिल अस्तित्वों में
घल-मिल जाते है !

स्वस्थ

हम सब
किसी बुखार के
मारे हुए हैं

हमें विगत-ज्वर होना है
करुणा के बजाय हमें
प्रेम का स्वर होना है !

क़लम कारण

हमने उठा ली क़लम
और जो कुछ ठीक माना
सो लिखने लगे

क़लम कर दिये गये
इस अपराध में
हमारे हाथ

कि हमने
उन्हें
नाथ क्यों नही लिखा !

प्रेम के खिलाफ़

तकलीफों का
कितना बड़ा रेला
मुझे हर प्यारी चीज़ से
छुड़ाने के लिए

कितना बड़ा तूफान
और कैसी - कैसी लहरें
सिर्फ एक आदमी को
डुबाने के लिए

चुपचाप

गरजता रहा सागर
मैं देकर उसकी तरफ़ पीठ
उस दिशा में चल दिया

जहां मुझे मालूम था
एक पुण्यतोया
चुपचाप बह रही है !

मौसम बनूं

कई बार
जी होता है कि
मैं एक मौसम होता

जानता हूं कि कुछ भी न होना
शायद सबसे बड़ी इच्छा है
आदमी की

दुनिया के दृष्टा
और दार्शनिकों ने
इसे मुक्ति कहा है

मगर जब एक बार
हो गया हूं तब तय है
कुछ - न - कुछ होता रहूंगा

जब कुछ - न - कुछ
होना ही है तो आदमी
या कीड़ी - कुंजर किसलिए

मौसम बनना चाहिए
बारी - बारी से
कि अभी तपू

अभी बरसू
अभी हिला दू
अस्तित्वों की हड्डिया !

पर्याप्त मानो

नहीं हम एक - दूसरे
नहीं जानते
मगर कोई जोड़ तो है
हमारे बीच

कितना मजबूत है
वह जोड़ या बंधन
खींचातानी करके इसे
आजमाने का जी नहीं है

मानता हूं कि
जी इसे आजमाने का
तुम्हारा भी नहीं है
अच्छी है यह मनस्थिति

पर थोडा - कुछ - जाना
ज्यादातर - अनजानापन
हमारा बना रहे

पक्का कुछ न करें हम
स्वल्प को समझ लें और
साध लें

भूमा को सधना होगा तो
सधेगा वह
स्वल्प - सुंदर की शोभनीयता में

कम - से - कम मैं
जितना समंजस है हमारे पास
उसके काम चला लूंगा
सलाह देता हूं तुमको भी
कि पर्याप्त से अधिक मानो
हमारे बीच के
अनुभूत होते हुए जोड़ को
छोड़ कर चिंता पर्याप्त से अधिक की !

हम ले लें हवा की जगह

अलग है
और शायद सजग भी है
इस ज़माने की हवा,
पिछले जमाने की हवा से

वह तेज भी इतनी है
पिछले जमाने की हवा से
कि गति में पड़ कर उसकी
उखड़ गये हैं हमारे पांव
और टिकाये नहीं टिक रहे हैं कहीं

यहां तक कि क़ाबू
हवा का अपनी गति पर
नहीं बचा है
प्रलय - सा मचा है एक
उसके प्राणों में भी
भयभीत है वह स्वयं भी
अपनी बाहर की गति
और भीतर की
प्रलय - संभावना से

शून्य हो गयी है सृष्टि की
ज्यादातर व्याप्ति
और हवा को भागना पड़ रहा है
बदहवास होकर
उसे भरने

सोचता हूं क्या ऐसे में
हम नहीं कर सकते उसे आश्वस्त
निकलकर स्वयं समस्त शून्य व्याप्ति को भ

नहीं ले सकते क्या हम
वह काम जो
साधारणतया हवा का माना गया है

और जिसे करने जा कर
वह बदहवास
हो जाती है

और भर देती है
जहां - जहां जाती है वहां - वहां
बदहवासी का वातावरण !

मुश्किल के वक़्त

कुछ भी न बने तो
हम ऐसा करें
आदमी न रहें
हो जायें कूड़ा - कचरा
और बहें जमाने की
तेज हवा के साथ गति में

सति - सप्तमी होती है न
संस्कृत - व्याकरण में
वैसे कुछ गुण आ जाये
हमारे आचरण में और

बच रहें तब अगर
अपनी ज़िद में
कुछ आदमी
कूड़ा - कचरा हो जाने से

तो हम उनकी आखों मे
घुस जायेंगे
और थम जाने पर हवा के
जो थमती ही है कभी - न - कभी
निकल आयेंगे हम
अपनी ज़िद में
बचे उन आदमियों की आंखों से
और फिर हो जायेंगे आदमी

फिलहाल
हम कूड़ा - कचरा हो जायें
न रहें आदमी दीद - ओ - दानिश्ता
मुश्किल के वक़्त ।

संभव है

अगर हम आदमी न रहें
आज की तेज हवा में
कूड़े - कचरे की तरह बहें

तो देखना चाहिए कि
यह फलहीन
अर्थहीन वलहीन
दुनिया आज की

किसी क्षण
सफल सार्थक और बलवत्
होती है या नहीं

हो जाता है या नहीं
जैसे देखिए मोती पैदा
सागर - भर निष्प्रयोजन
तैरते रहने वाली सीप में

एकाध सीप में तो
हो ही जाता है और
कई द्वीपों की
एकाधिक सीपों में
हो जाता है

तो अभी हम उड़ते रहें
कचरे की तरह हवा में
आदमी न रहें

अफ़सर हो जायें व्यापारी हो जायें
डाक्टर बन जायें
वकील बन जायें

खोल दें कोई
स्वयं सेवी - संस्था
बोल दें जय किसी
शक्तिशाली व्यक्ति की
और भी अच्छा चले जायें सत्ता में

संभाव्य है इस तरह
कूड़ा - कचरा बन जाने के बल पर
किसी दिन सार्थक होना
फलहीन अर्थहीन
बलहीन दुनिया मे

सांग हो सकता है यह रूपक
दूसरी तरह से अगर मैं कहूं
कि खाद हो जाता है किसी दिन
कूड़ा - कचरा

और बीज को बल देता है
बंजर पडी धरती को
फल देता है !

भटकते रहो

भटकते रहो
पहाड़ों की चोटियों पर
वनों में
नदियों के किनारे

खटकते रहो काल को
जिसने सोचा था
बैठ जाओगे तुम निढाल
कहीं न कहीं
उसकी चाल में पड़ कर !

बूढ़ी अमराई

जैसे बेसिलसिले
चलते - चलते - चलते
हमारी - आपकी कृतियां
कला गिनी जाने लगें

या हम और आप
बिना किसी खूबी के
जीते - जीते - जीते
ठीक आदमी माने - जाने लगें।

ऐसा ही कुछ हुआ
मेरे गांव के बाहर की
बूढ़ी अमराई का

उसने कभी कहने लायक़
फल नहीं दिये
मगर छाया वह ठीक
देती रही

कितने तपे शरीर
झुलसे मन थके पावों को
स्निग्धता दी सहलाया
उतारी थकान

सत्तर साल से तो
मैं देखता आया हूं

इस फलहीन अमराई की
छाया का आकर्षण

वह अवर्षण के दिनों में भी
कभी क्षीण नही दिखी
कभी किसी पतझड़ में

दीन नहीं दिखी
अपनी नन्हीं कोमल
कोंपलों के बल पर

याने फल पर नही रहा
इसका दार-म-दार
अपनी लंबी - चौड़ी
घनी छाया के बल पर रहा

चारों तरफ़ के रास्ते
इसकी तरफ़
पगडंडियों की शक्ल में आकर
जुड़े हैं

रोज कितने राही किसान
और बारातें
मेले - ठेलों से आते - जाते यात्री
इसकी ओर मुड़े हैं

उत्सव की राते
आफ़त के क्षण
नींद की गहराई
का अनुभव करता हूं मैं

जब कभी आता हूं
अपने गांव की इस अमराई की छाया में

और सोचता हूं कई बार
अपनी साधारण कविता
सादी अपनी जिंदगी
जिसने अपनी तरल एक
निरंतरता के कारण
बिना कुछ खास किये
नगण्यता का आभास
नहीं होने दिया मुझे

दूसरों को भी कितना मुझसे
हिलाया - मिलाया
फलहीन अमराई की छाया की तरह

देख पाता हूं मैं अपनी कविता को
बुढ़ापे में

मंजरी और रसाल हीन
अमराई
कितने राही किसान यात्री
उत्सव की रातें
थके थके ताजा होते दिन !

एक नियति

घर मेरा
अगर धरती पर
न होता

निवास होता अगर
मेरा पवन से भी ऊपर के
किसी गगन में

तो विषम न होती
मेरी स्थिति
और गति

बंधी हुई गति होती
तब मेरी
किसी नक्षत्र की तरह

शायद तब मैं
नक्षत्र ही होता कोई
नाम या अनाम

धरती भी वैसे
एक नक्षत्र है
और गति उस दूर भी

बंधी हुई है
मगर मैं नक्षत्र नहीं हूं
रहता हूं इस नक्षत्र पर

अपरंपार यह वैतरणी

जिसकी किसी भी
कृति पर मेरे हाथों की छाप
कहीं नही है
छूटना चाहता हूं मैं
उस जगह के हाथों से

साथी कुछ है
भरोसा मगर वैसा नहीं है
उसके साथ का

जैसा उन जगहों के साथियों का था
जहां कही - कही
मेरे हाथों की छाप थी

कुछ नही तो पड़ती थी
जहा के रास्ते की धूल पर
मेरे पांवों की छाप

यहां तो न मेरे पांव
कोई चिह्न छोड़ पाते है
न कही पहुंच कर

किसी से जुडने के लिए
व्याकुल मेरे प्राण
मुझे किसी से कही जोड़ पाते हैं

जुड़ने की चिंता में निकल कर बाहर
मन में इस शहर की पकड़ से
छूटने की बात घूमने लगती है

जिसमें कहीं नहीं है
मेरे या मेरे - जैसे लोगों के
हाथों की छाप

रातों - रात
नये दानवाकार रूप
खड़े हो जाते हैं जहां अपने - आप

निकलो अगर महीने-दो-महीने
बाद भी यहां के
पहले के जाने हुए मुहल्ले मे

तो वह पहचान में
उस तरह नही आता
जैसे रामलीला में

राक्षस का चेहरा लगा लेने वाला
मेरा जाना हुआ
कोई आदमी

मन को कभी-न-कभी
अपनेपन का आभास
चाहिए न अपने आसपास

टिकता नही है यह आभास
पक्की सड़कों, पक्के मकानों

और उन पर आते - जाते
या रहने - वसने वाले
पक्के आदमियों में

न यहां के कारखानों या वाहनों से
निकल कर भर देने वाली
आवाजों में

न आदमी के हाथ के स्पर्श के
बिना वजने वाले
करख्त उन साजो में

जो तड़के
सुबह से सुबह तक शोर करते है
घरों में पूजाघरों में सड़कों पर
बागीचों में बाजारों में

छविगृहों आदि में तो खैर
मैं जाता ही नही हूं
याने मैं यहां
खुश घूमते-फिरने वाले लोगों में
आता ही नही हूं

मुक्त करो मुझे बिना मन की
इस आग से
बाज आया मै इस सुहाग से
जिसे मेरा प्राण-पिया
नही चाहता

मैं जिया नहीं चाहता
दूसरों के लेखे मज़े की
अपने लेखे ऐन निरानन्द
यह ज़िन्दगी
मैं ठीक

किसी को मैं यहां
राहत नही दे पाता
न ले पाता हूं किसी से राहत

और चला जा रहा हूं यहां रहता
लगभग एक वैतरणी में बहता
जिसका पार नही है !

घरे वाहिरे

काले
पुराने
देखे भाले सौन्दर्य
पहाड़ी वाजों के

छाले उन पांवों के
जो पहुंचे थे तुम तक
चुपचाप
विना आवाजों के
वनान्तरों में

मत ढूढो वैठे-वैठे उन्हें
अब घरों में

अक्षरों में
शब्द नहीं होते
शब्दों में
अक्षर होते है

सौन्दर्य और प्रेम
और परेशानी
सव घर के वाहर है

घर में तो कलह है
घर के वाहर है
हर पाने लायक चीज़

अब समझ में आ रहा है
कहना शंकराचार्य का
जिसने घर छोड़ा उसने डर छोड़ा
और छुड़ाया डर दूसरों का !

रूहो-गिल

तू किसी असम्भव के
फेर में रहा
इसीलिए कभी
जबर में रहा
कभी ज़ेर में रहा
ग़ज़ल में रहा
शेर में रहा

न मक़ता सधा
न मतला
अब मत अपनी नज़्म
किसी को बतला

फेर से निकल
जबर और ज़ेर से निकल
ग़ज़ल से निकल
शेर से निकल

ये सब तुझे
महफ़िल तक ले जाते हैं
रूह से जुदा करते है
गिल तक ले जाते हैं !

शब्द-भेद

शब्दों को जमा लेता हूं
मन्द या तीव्र उनकी गति
पंथ के पसारे को समझ कर
बढ़ा देता हूं कभी लेता हूं

मगर पकड़ नहीं पाते
मेरे शब्द
जिन्दगी को जो मुझे
बता कर अपना
अभिसार-स्थल
आगे निकल गयी है

लगता है शब्दों को
जमाने उनकी गति
के माने या
थमाने में दुर्गति
शक्ति की हुई है

हुई नहीं है
कविता में और मुझ में
इतना कह कर
आगे निकल गयी थी
जिन्दगी

और तुम बन्दगी में
शब्दों की लगे रहे
कविता को नहीं पकड़ा !

तत्सत

मुझे पकड़ो
तो वह मिल जायेगा
वह छिप गया था मुझ में
विष-बुझे बाण-सा

और भिद गया है
अब समूचे मेरे अस्तित्व में
मेरे प्राण-सा

मुझे पकडोगे
तो वह मिल जायेगा !

पहाड़ी नदी

कल घाटी में बह रही नदी
कहने को
सिर्फ़ बह रही थी

मगर मैंने
महसूस किया
कि उसने

पास की पहाड़ी की
प्यास को समझ कर
ताजा और ठंडा एक गीत गाया

कि मैं
प्रकाश की तरह
बहती हूं

मगर बनी रहती हूं
घाटी में भी
कि कभी

प्यास लगे पहाड़ी को
तो पहाड़ी
प्यासी की प्यासी न रह जाये

और पंछी हर एक
जो पहाड़ी की खोहों में
बसता है

अपने काले डैने
जब चाहे तब फैलाकर
उतर आये मेरे किनारों पर

और फिर उड़ जाये
ऊपर आसमान में यों
मानो

वह
कोई बादल हो
गरुड़ पंखी !

अन्ध-अविश्वास

सारे ब्रह्माण्ड को
छान डालने की धुन में
कुछ अपने भीतर
डुबकी लगा लेते थे
कहते हैं
वे कुंडलिनी
जगा लेते थे
और उनके लिए सब
हथेली पर धरे
आंवले की तरह हो रहता था

अब वैसे 'अन्धविश्वासी' लोग
शायद नहीं बचे
अब ब्रह्माण्ड
दूसरी तरह से छाना
जा रहा है

इस तरह को
'अन्ध' किसी अर्थ में
नही माना जा रहा है
क्यों कि दृष्टि इसमें
जानने से आगे जाकर
लूटने-खसोटने
डरने-डराने
मरने-मारने की है

वैज्ञानिक कहा जाता है इसे
मैं इस अन्धविश्वास से
बढ़ी हुई चीज के लिए
शब्द ढूंढ रहा हूं
वैसे 'अन्ध-अविश्वास' शब्द से
काम सकता है चल

क्यों कि ब्रह्माण्ड की यह छानवीन
जिस ध्यान की उपज है
उससे आगे-पीछे
छार-छार हो सकता है
जल सकता है
हर खास, हर आम !

कविता करेगी यह

कोई पचास-पावन बरसों से
मैं कविताएं लिखता चला आ रहा हूं
अब कोई मुझसे पूछे कि
क्या मिलता है तुम्हें
कविता लिखने से ऐसा
कि तुम इस काम को बन्द नहीं करते
बल्कि गति अपने लिखने की
दिनों-दिन बढ़ाते चले जा रहे हो

मैं इस सवाल के जवाब में
गिना सकता हूं सौ बातें
ऐसे सैकड़ों दिन सैकड़ो रातें
जो मुझे मिली हैं कविता के मारफत
क्यों कि कविता लिखना
कोई एक काम नहीं है
वह जाने कितनी गण्य और
नगण्य चीजों का सिलसिला है
जो अभी यहां टूटा है तो
जाने कहां कैसे और किससे
जा मिला है

जैसे अभी दो मिनिट पहले
जब मैं कविता लिखने
नहीं बैठा था तब
कागज कागज था

मैं मैं था और क़लम क़लम
मगर जब लिखने बैठा
तो हम तीन नही रहे
एक हो गये

किन्हीं अलग-अलग अस्तित्वों का
एकाएक और इतनी आसानी से
एक हो जाना अपने आप में
एक करिश्मा है
बड़ी आसानी से होते हैं
कविता के बल पर करिश्मे

मुझे भीतर ही भीतर कहीं
लगता है कि किसी बड़े
करिश्मे की जरूरत है दुनिया को
करिश्मा बड़ा पैदा अब
कविता के सिवा
किसी और चीज से नहीं होगा
कविता मगर करिश्मे के लिए
सिर्फ मुझे नही लिखना है
एक दुनिया की दुनिया को
लिखनी है

पहले महाकवि होते रहते थे
तुलसीदास सूरदास कबीर मीरा
और बदल देते थे दुनिया ऐसी
कि टिक रहते थे जाते हुए मूल्य
उनके जमाने मे
उनके जमाने तक ही नही
आगे आने वाले युगों तक

अब वैसा नहीं हो सकता
कविता लिखने वालों की एक सेना चाहिए
संवेदना से भरे हजारों लाखों लोग
अपने को कविता लिखने में जुटा दें
और गुंजा दें सारा आकाश
संवेदना से भरे कहो
वेदना से भरे कहो
शब्दो से

बदल जाये तब वातावरण
लोग तब किसी भी रण-भावना से
रिक्त हो जायें
न रहे कोई छोटी-बड़ी स्पर्धा
बदलने लगे आपाधापी
प्रेम और पारस्परिकता में

बनिये व्यापारी शास्त्री या शास्त्री
न रहें हम
हम सब कवि हो जायें
कवि की तरह रहें
कवि की तरह कहें
और सहें तकलीफें दूसरों के लिए
कवि की तरह

मैं कविता जो लिखता हूं
सो कवि होने के लिए
और इस आशा मे कि
लोग कविता लिखें या न लिखें
किसी दिन कवि हो जायेंगे

शब्द वे जो बोलेंगे साधारणतया भी
सबके दुख-दर्द गायेंगे
और लौटेंगे मूल्य मानवता के
बदल जायेंगे आज के
ईंट के फ़र्शों की तरह जमे हुए
संवेदना-हीन मन !

पत्ते आज

पत्ते आज
सामने के पीपल की डाल पर
यों उठ-गिर रहे हैं
मानो वे डैने हों
आकाशगामी किसी पंछी के

हवा आज अपनी पर है
सब-कुछ बनाये डाल रही है अपना
यहां तक कि मैं भी
एक तरह का
पीपल हो गया हूं
रोम-रोम मेरा
मन हो गया है

शरीर-भर मेरा मन
उठ गिर रहा है
आकाशगामी पंछी के डैनों की तरह
मगर जा-आ नहीं रहा है वह
पीपल के पत्तों की ही तरह
कहीं शरीर को छोड़कर

किस
हवा का
है यह खेल !

मन मेरे

मन मेरे जब तुम
इतने उठ-गिर रहे हो
तब तुम्हें चाहिए
कि मुझे अपने डैनों पर लेकर
सम या विषम
किसी नये उपस्थित तक
पहुंचाओ भी

पुराने और
जहां के तहां खड़े
पीपल के वृक्ष की तरह गड़े
बने मत रहो
किसी अस्तित्व का पत्ता

चलो दिगंतो तक
और कहो वह सब
दिगंत जिसके बिना गूंगे हैं
तरल नहीं है
प्रकाश या पवन की तरह

आकाश चीरते हुए
गरुड़ की तरह
फड़फड़ाते ही मत रहो
पिंजरे में बंद
किसी पंछी जैसे !

दिल्ली दूर अस्त

जब फागुन और चैत में
रंग बरसेंगे
पहाड़ों और मैदानों में

जब खेतों में
सुबह से रात तक
कंठों से निकलकर

सुर गूंजेंगे
चैती के
उतरेंगे भीतर प्राणों में

तब हम
कुछ और
करें या न करें

दिल्ली से
दूर रहेंगे
वही कही

जहां रंग बरसेंगे
सुर गूंजेंगे चैती के खेतों में
सुबह से रात तक

और कोई तब
चाहेगा उस समय हमें
किसी काम से दिल्ली में

तो हम
सोच लेंगे मन में
दिल्ली दूरस्त !

वसंत दिल्ली में

फागुन और चैत में
रुके रहे दिल्ली में
तो सुनोगे
आसपास
इमारतें बनने-बनाने के
सिलसिले में
ईस्पात की बडी मशीन की
ईस्पात के
किसी छोटे बड़े टुकडे पर
चोट की आवाजें

देखोगे खिले
और लटकते हुए
पलाश और अमलताश की
जगह
उड़ते हुए चिनगारियां
जो लोहे को
झुकाने और जोड़ने में
छूटती है
फुलझड़ियों की तरह

और चोटें पड़ने
और फुलझड़ियां छूटने के
बीच-बीच में
आवाज़ें ओछी और कठोर
काम करने वालो से
काम लेने वालों की

रुके रहे अगर तुम
उस वक़्त दिल्ली में
तो जहां कहीं जाओगे

अपने जैसे
संदिग्ध लोग पाओगे
स्वर और सौन्दर्य की छुअन से
हीन

दीन किसी रास्ते पर
या दफ़्तर में
विमूढ कि

वे जिसे जानते थे
वह यहां नहीं है
स्वर और रंगों का मेला

एक सब कुछ को
जमाकर बर्फ कर देने वाली
ठंडा और क्रूर हवा
बह रही है भीतर-बाहर
वसंत में भी !

बरस के पहले दिन

आज हवा का चेहरा नीला है
और आवाज में उसकी
कोई रंग है
आफ़त की घड़ी में
यह क्या ढंग है
वातावरण का

पांव के नीचे
हमारी परेशानियां के
खड़े रहने के लायक ही नही
गति भरने लायक
ठोस आधार है
उस धरती का
जिसे सौ तरह से
ठोक-पीट कर पक्का कर दिया गया है

परेशानियां गति से
दौड़ती चली आ रही हैं
हमारी तरफ़
और ऐसे मे
हवा का चेहरा नीला है
नीलाम्बुज श्यामल कोमलांगम्

और आवाज़ में उसकी
कोई रंग है
साफ देख पा रहा हूं

रंग है कौस्तुभ का
देखना कठिन है ऐसे में
यह सुन्दरता

मैं पीठ फेरता हूं
इस दृश्य की तरफ से
और टेरता हूं
उन परेशानियों को
जो मेरी तरफ़
दौड़ती चली आ रही है

या उतरती चली आ रही हैं
ऊपर से नीचे
अवतरण-चरण
बरस के पहले दिन !

अगर मन में

अगर मन में
सागर आ जाये
तो अलग है वह
उसे किनारे पर बैठे-बैठे
देखने से

तब जो
लहरें उठती है
मथ डालती है वे मन को
अपनेपन के अहसास पर
फेन छा जाता है
याने भीतर मन में
भयंकर एक
तूफ़ान आ जाता है

मन के भीतर का तूफान
किनारे से दूर या पास
सुना जाने वाला
गान या गर्जन
नहीं है सागर का

सर्जन आप इसके बीच
खड़े रह कर
नहीं कर सकते
शायद उस स्थिति का
कभी बाद में
कर सकते है

उस क्षण कुछ नहीं कर सकते
जब आ जाये सागर
मन में !

पराजित हम

एक वक्त हम
चुप्पी को स्वरों से
तोड़ते थे
सन्नाटे को
संगीत से जोड़ते थे

अब शोर को
किस चीज से तोड़ें
भीड़ को जो सौ तरह की है
किस विचार या
भाव से जोड़ें

चुप्पी समस्या नहीं थी
एकाकीपन नही था
समस्या

शोर समस्या है
भीड समस्या है
और अपरम्पार है

हार है यह हमारी
हम हार को
अस्वीकार कर सकते है
स्वर उठाकर जोर से

मगर
बच नही सकते

शोर से
कह कर उसके खिलाफ
जोर से कुछ
और न भीड़ को
जोड़ सकते हैं विचार से
या विवेक से

स्वीकार करनी चाहिए
हमें अपनी हार
सीधे-सीधे !

फिर बहुत दिनों तक

रात ने एक हल्का इशारा किया
और कवि
उसके पास सरक गया

इस अप्रत्याशित घटना से
बादल का घना टुकड़ा
एक जगह से दरक गया

और उस संधि में से
चांद
दिखने लगा

चांदनी में
डुबा कर कलम
पहाड़ कुछ लिखने लगा

फिर बहुत दिनों तक
न रात को आने-जाने की
सुध रही

न कवि ने न पहाड़ ने
किसी से अपने उस सुख की
बात कही !